परिशिष्ट

# श्री जिन-पूजा विषयक प्रश्नोत्तर

## (सम्यक् पूजा विधि)

१. प्रश्न--क्षीर समुद्र के जल से ही देवों ने जन्माभिषेक क्यों किया ?

उत्तर--अन्य कूप तड़ाग सरिता सागर आदि के जलों में त्रसजीव होने से उसे अभिषेक के योग्य नहीं समझा गया। क्षीर समुद्र के जल में जलचर जीवों का अभाव होने से (देखो-नेमिचन्द्राचार्यकृत "तिलोयसार" गाथा ३२०) उसे अभिषेक योग्य समझा गया न कि वह जल क्षीरमयी होने से। वह जल न तो क्षीर वर्ण का था और न क्षीर ही था अगर क्षीर (दुग्ध) ही होता तो उसे जल शब्द से नहीं लिखते उसका स्वाद सिर्फ क्षीर जैसा होने से उसकी संज्ञा क्षीर कहलाती थी (वैसे कोषों में क्षीर का अर्थ जल भी है देखो अमरकोष-"नीर, क्षीराम्बुशंबरम्।"

त्रसजीवों का अभाव तो मनुष्य क्षेत्र से बाहर के दूसरे निकट वर्त्ती तीसरे चौथे समुद्रों के जल में भी है, उन्हीं का जल अभिषेक के अर्थ क्यों नहीं लाये ? दूरवर्ती पंचम क्षीरसमुद्र का क्यों लाये ? इसका उत्तर यह है कि—देवों की संख्या इतनी अधिक थी कि—उनकी पंक्ति क्षीर समुद्र तक ही समा सकती थी कम क्षेत्र में नहीं। इसलिये जल लाने का विस्तार क्षीर समुद्र तक करना योग्य समझा गया।

यदि कहो कि—देवगण विक्रिया से समा सकने योग्य अपना अपना छोटा शरीर कर सकते थे किन्तु वैसा करने से शोभाहीनता आती थी। शरीर छोटा और कलश बड़े ऐसा दृश्य भद्दा मालूम देता। इस पर भी यह कहें कि—कलशों को भी छोटे कर लेते तो ऐसा करने पर पर्याप्त अभिषेक नहीं होता।

Scanned by CamScanner

२. प्रश्न—तेरापंथ और बीसपंथ की पूजा विधि में कौन समीचीन है ?

उत्तर--तेरापंथ की पूजा विधि को बीसपंथ आदि सभी मान्य करते हैं उसका उपयोग करते हैं अतः वह तो सर्व सम्मत है। किन्तु बीसपंथ की पूजाविधि को तेरापंथ आदि अमान्य करते हैं अतः वह निर्दोष नहीं है और न निर्विवाद ही है।

जिस पूजा विधि में कमसे कम आरंभ और हिंसा हो वह उतनी ही श्रेष्ठ है और जिस में ज्यादा से ज्यादा आरंभ व हिंसा हो वह उतनी ही असम्यक् है। इस तरह भी तेरापंथ की पूजाविधि ज्यादा समीचीन है वह सरल, सस्ती और सुन्दर भी है साथ ही वीतरागता, निर्ग्रंथता को भी लिये हुए है। जबकि बीसपंथ की पूजाविधि असम्यक् है, वह कठिन, महंगी, अशोभन एवं सरागता सग्रंथता, सावद्यता को लिये हुए है।

जिस पूजा विधि में विवाद हो, संशय हो वह ग्राह्य नहीं है। जैन शास्त्रों में शंकित दोष के अन्तर्गत बताया है कि—किसी वस्तु में कोई भी संदेह उपस्थित हो जाये तो उसे त्याग देना चाहिये त्याग देने में कोई हानि नहीं, किन्तु ग्रहण करने में तो आपत्तियां ही संभव है। इसके सिवा जब निर्विवाद निःसंशय वस्तु उपलब्ध हो तो उसे ही ग्रहण करना चाहिये विवादस्थ संशयात्मक को कभी नहीं—यही विवेक का तकाजा है। इसी से सम्यग्दृष्टि निःसंशय-निःशंक होता है। जो प्रत्यक्ष में ही बाधित हो, दूषित हो ऐसी विधि के लिये शास्त्रप्रमाण या किसी साक्षी की भी कोई जरूरत नहीं है वह तो स्वतः ही त्याज्य है। फिर भी हम युक्ति और शास्त्र प्रमाण के साथ उस पर विचार करेंगे। नीचे उसी का प्रक्रम किया जाता है।



३. प्रश्न—हम पूजापाठों में बोलते तो "घेवर-मिंदोड़ा बरफी जु पेड़ा" हैं और चढ़ाते उनकी जगह चिटकें हैं क्या यह मायाचार या असत्य नहीं है ?

उत्तर--यह कदापि मायाचार या असत्य नहीं है। यह स्थापना सत्य है। जिस तरह पत्थर की मूर्त्ति साक्षात् अरहंत की मानी जाती है उसी तरह स्थापना निक्षेप से चिटकें भी नैवेद्य (मिष्ठान्न) मानी जाती हैं इसमें कोई दोष नहीं है। हमारी सारी पूजा प्रक्रिया (पूज्य-पूजक-पूजा विधि) ही स्थापना निक्षेप के आधार पर संकल्पित है। देखिये—पूजक अपने को इन्द्र कहता है किन्तु उसमें इन्द्र के एक भी गुण नहीं हैं। हम बात क्षीर समुद्र के जल की करते हैं किन्तु किसी भी कूप-सरोवर-नदी का जल लाकर हम अभिषेक कर देते हैं। हम अक्षत चढ़ाते वक्त मोतियों के पुंज बोलते हैं और चढ़ाते कोरे चांवल हैं। इसी तरह पुष्प चढ़ाते वक्त अनेक पुष्पों के नाम बोलते हैं किन्तु चढ़ाते पीले चांवल हैं। कुंकुमाक्त-केसर से रंगे पीले चांवलों की पुष्प संज्ञा आशाधरादि सभी शास्त्रकारों ने मान्य की है। बात रत्नों के दीपक की करते हैं और जलाते घृत के दीपक हैं। हम बोलते सिंहासन ( सिंहों से अधिष्ठित आसन ) हैं किन्तु लकड़ी, चाँदी, पीतल आदि के कोरे चार पायों के आसन विराजमान कर देते हैं। इसी तरह साक्षात् पंचमेरु,अष्ट,-प्रातिहार्य-अष्टमंगल की जगह धातु आदि के नकली विराजमान स्थापित कर देते हैं। हम चमर (चमरी गाय की पूंछ के बालों का गुच्छा) ढोरने की बात करते हैं, किन्तु गोटे आदि के बने नकली चंवर ढोरते हैं क्योंकि असली हिंसाजन्य होते हैं।

जब हम इतना काम नकली करते हैं तो फिर कुछ पूजा-द्रव्यों पर ही क्यों आपत्ति की जाती है। तेरापंथियों ने असली पुष्प-नैवेद्य-फलादि में बह्वारंभ और विपुल हिंसा लक्षित कर स्थापना

श्री पार्श्वनाथ दि० जैन स्वा० मन्दिर
(राज.) पो० ग०

Scanned by CamScanner

निक्षेप से उनकी जगह प्रासुक द्रव्यों का नियोजन कर लिया तो वह सब तरह से समुचित और समीचीन ही है। उसकी किसी तरह आलोचना करना अज्ञता ही है।

जैसा पूजा पाठों में बोलते हैं ठीक उसी तरह विविध पुष्प नैवेद्य फलादि तो बीसपंथी भी नहीं चढ़ाते हैं। फिर दूसरों पर आरोप आपत्ति क्यों ?

अगर तप कल्याणक आहारदान के अवसर पर चार प्रकारके आहार नैवेद्य का उपयोग न कर कोरी चटकें समर्पित करें तो वह अवश्य मायाचार या असत्य है। क्योंकि वहाँ स्थापना सत्य काम नहीं करता किन्तु जब मूर्त्ति जड़-पत्थर को है और उस अरहंत अवस्था की है जिसमें आहार-भोजन का कोई काम नहीं है वहाँ पर स्थापना सत्य ही संगत और सम्यक् है।

लोक में भी इस प्रकार के सत्य का काफी वर्चस्व व्यवहार है। देखिये—स्याही उसे कहते हैं जो स्याह (काले) रंग की हो किन्तु लाल, नीले, हरे आदि रंगों की बनी को भी स्याही ही कहते हैं। इसी तरह तैल उसे कहते हैं जो तिलों से उत्पन्न हुआ हो किन्तु मूंगफली-सरसों, सोयाबीन, अंडोली आदि से निकले स्निग्ध पदार्थ को भी तैल ही कहते हैं। बांस से बने वाद्य को वंशी कहते हैं किन्तु पीतल, स्टील आदि धातु से बनी भी वंशी कही जाती है। चांवल को अक्षत-आखा कहते हैं किन्तु जौ, गेहूं आदि धान्यों को भी आखा कह देते हैं। अमर कोष में रसाल और सहकार ये आम के ही नाम बताये हैं (आम्रश्चूतो रसालश्च सहकारोऽतिसौरभः ।।) किन्तु अन्य फलों को भी रसाल और सहकार (सैंगार-व्रत का पारणा) कहते हैं। मृग का अर्थ हिरण होता है किन्तु अन्य पशुओं को भी संस्कृत काव्यों में मृग कहा है।



इसी तरह शतरंज, गंजीफा (तास) नकशे आदि में भी स्थापना निक्षेप का व्यवहार होता है। स्थापित वस्तु चाहे सजीव हो चाहे निर्जीव तदाकार (उसी आकार की) हो चाहे अतदाकार (भिन्न आकार की) सब स्थापना निक्षेप में आ जाती है।

समक्ष में १-२ तीर्थङ्करों की ही मूर्त्ति होते हुए भी हम अन्य तीर्थंकरों सिद्ध, बाहुबली, सप्तर्षि, निर्वाण क्षेत्र, दशलक्षण, रत्नत्रय, अकृत्रिम चैत्यादि की पूजा कर लेते हैं उसी तरह नैवेद्य पुष्पादि का उच्चारण करके भी उनकी जगह प्रासुक द्रव्य चढ़ा देना अनुचित और असत्य नहीं है बल्कि ज्यादा समुचित और सम्यक् है।

इससे सिद्ध है कि—शब्दों पर ज्यादा जोर देना व्यर्थ है। शब्द मुख्य नहीं है भाव ही मुख्य और फलदायी हैं शब्द तो सिर्फ माध्यम हैं। इसी तरह संकल्प विचार ही मुख्य है वस्तु मुख्य नहीं है इसीलिये वस्तु के अभाव में (या विपरीत वस्तु के होते) भी कोरे संकल्प-भाव से ही शुभाशुभ कर्मों का बंध हो जाता है।

एक बात और है—शब्द चाहे कुछ भी हो अर्थ उनसे सदा उच्च एवं आदर्शमय ही ग्रहण करना चाहिए। शास्त्रों में "अजैर्यष्टव्यम्" पर कथा देते हुए बताया है कि-जो मांस लोलुपी (हिंसक) थे उन्होंने तो इस का अर्थ यह किया कि—बकरों, पशुओं से यानि उनकी बलि देकर यज्ञ-पूजा करना चाहिये और जो अहिंसक थे उन्होंने यह अर्थ किया कि—अज यानि जो न उगे ऐसा ३ वर्ष पुराना जौ आदि धान्य हो उससे यज्ञ-पूजा करना चाहिए। इसके निर्णय के लिये जब सत्यवादी राजा वसु के पास गए तो वह गुरु पत्नी के बहकावे में आ गया और उसने गुरु पुत्र का पक्ष ले लिया इससे वह सिंहासन समेत पाताल में धंस गया और मर कर नरक गया तथा अहिंसक नारद लोक में प्रशंसित हो स्वर्ग में गया। (यह कथा वैदिकों के महाभारत में भी पाई जाती है।)

Scanned by CamScanner

शास्त्रों में अभिधेय (शब्दानुसार) अर्थ की दुहाई देकर अभिप्राय के लोप करने को भी असत्य माना है। अतः शब्द और अर्थ से भी ज्यादा वजनदार-महत्त्वपूर्ण अभिप्राय-आशय है उसी पर लक्ष्य रखना चाहिए।

शब्द ज्यादा वकत नहीं रखते हमारी नियत ज्यादा वकत रखती है अतः शब्दों की शरण न लेकर उनके सम्यक् अभिप्राय का आश्रय लेना ही श्रेयस्कर है। शब्द रूपी नौकर की क्या सेवा करनी अभिप्राय रूपी ठाकुर को सेवा करनी चाहिये तभी मेवा मिलेगी।

शास्त्रों में भावसत्य के लिए लिखा है—जो वचन हिंसा जनक हों सत्य होते भी वे असत्य हैं। और जिनसे किसी की रक्षा हो वे असत्य होते भी सत्य हैं। यह जैनी नीति है।

द्रव्य से भाव महान् हैं। द्रव्य शरीर मात्र मुर्दा है और भाव प्राणमय आत्मा हैं। इस दृष्टि से हम सोचें तो पीले चांवलों को पुष्प, चटकों (गिरि) को नैवेद्य तथा पीली चटकों को दीप इत्यादि कहना सब भाव सत्यरूप ही हैं।

अशुद्ध-अप्रासुक द्रव्यों को तो धर्म कार्य में कभी ग्राह्य ही नहीं बताया है। शुद्ध प्रासुक द्रव्यों का ग्रहण ही उपयुक्त बताया है, साथ ही भावों की शुद्धि पर विशेष जोर दिया है। इसीलिये पूजा के प्रारम्भ में सूचित किया है—

**द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं।**
**भावस्य शुद्धि मधिका मधिगन्तु कामः॥**

**(अर्थात्—यथा शक्य द्रव्य की शुद्धि को प्राप्त करें और उससे भी ज्यादा भावों की शुद्धि को प्राप्त करने का प्रयत्न रखें।)**

**४. प्रश्न—जब हमें पुष्प फ़लादि असली उपलब्ध हैं तो फिर हम नकली क्यों चढ़ायें? क्या असली से नकली ज्यादा गुणकारी हैं?**



**उत्तर**—वनस्पति कायिक सचित्त पुष्पादि अनेक त्रस जीवों से भरे होते हैं तथा बहुत से अनंत कायिक भी होते हैं अतः उनका स्पर्श ही महान् दोषास्पद बताया है फिर उनका चढ़ाना तो किसी तरह समुचित ही नहीं है। पवित्र निष्कलंक प्रभु को प्रासुक निर्दोष वस्तु ही चढ़ाई जा सकती है, सदोष अप्रासुक अशुद्ध वस्तु नहीं। धर्मस्थान में तो इस का खास खयाल रखना चाहिये।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार की "देवाधि देव चरणे परिचरणं" कारिका में जिनपूजा को वैयावृत्य के अन्तर्गत बताया है और वैयावृत्य के अतिचारों में "हरित पिधान निधाने" कारिका में हरित से स्पृष्ट वस्तु को देना अतिचार बताया है। ऐसी हालत में साक्षात् हरित पुष्प फलादि को जिन पूजा में चढ़ाना अतिचार ही नहीं स्पष्ट अनाचार सिद्ध होता है।

पुष्पादि सरागता के द्योतक हैं अतः वीतराग प्रभु के लिये वे किसी तरह उपयुक्त नहीं हैं। इसी से एकीभाव स्तोत्र में कहा है कि—तर्तिक भूषा वसन कुसुमैः किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः॥ हे भगवन् आभूषण, वस्त्र, पुष्प और शस्त्र ये सब आपके लिए प्रयोजनहीन हैं।

वसुनंदि श्रावकाचार गाथा ५८ में लिखा है कि—पुष्प नित्य त्रस जीवों से भरे रहते हैं। श्रावकाचारों में बताया है कि—सब जाति के पुष्प हेय हैं।

यहाँ "सावद्यलेशो बहु पुण्यराशौ" का अभिप्राय यह है कि—थोड़े स्थावर जीवों की विराधना क्षन्तव्य है। किन्तु अनंत कायिक स्थावर और त्रसजीवों की विराधना जो पुष्पों में होती हैं वह क्षन्तव्य नहीं है, वैध नहीं है। देखो—"भव्यजन कंठाभरण" श्लोक ८३-८४॥

Scanned by CamScanner

बहुत से भाई यह समझते हैं कि—५वीं सचित्त त्याग प्रतिमा वाले के लिये ही प्रासुक अचित्त पुष्पादि से पूजन का नियम है अन्य के लिए नहीं।" उनको ऐसी समझ शास्त्र-सम्मत नहीं है।

पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय में प्रोषधोपवास के वर्णन में प्रासुक द्रव्यों से ही पूजा करने का खास विधान किया है। प्रोषधप्रतिमा चौथी प्रतिमा है। यह सचित्त त्याग प्रतिमा से पूर्व की है। प्रासुक द्रव्यों से पूजा का विधान प्रोषध प्रतिमा वाले के लिए ही नहीं किन्तु उससे भी नीचे सामान्य प्रोषध करने वाले के लिए भी किया है।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि—सामान्य पूजक तक के लिए मात्र प्रासुक द्रव्य से ही पूजन का विधान है। किन्तु आज तो व्रती ही नहीं प्रतिमाधारी तक वह भी ब्रह्मचारी जो सातवीं प्रतिमा के धारी हैं सचित्त द्रव्यों से पूजा करते, कराते हैं।

यह कहाँ तक शास्त्र सम्मत है विवेकी विद्वान् विचार करें। मूलाचार (चतुर्विंशतिस्तव) में "उसहादि जिण वराणं" गाथा की वसुनंदि टीका में सामान्य तौर पर सभी के लिए प्रासुक द्रव्यों से पूजा करना बताया है।

पं० जौहरीलालजी कृत बीस विहरमान पूजा में भी प्रासुक फूल फल चढ़ाने का ही निरूपण है।

पं० आशाधरजी ने अपने टीका ग्रंथों में अनेक जगह पीत-तंदुलों को पुष्प संज्ञा दी है। पुण्याश्रव कथाकोश पृ० १२ में "सुवर्ण वर्ण तंडुलान् पुष्पांजलि संकल्पेन क्षिपेत्" (पीले चांवलों को पुष्प मानकर चढ़ावें) ऐसा लिखा है।

पद्म चरित (रविषेण कृत) भाग २ पृष्ठ ९७ (ज्ञानपीठ प्रकाशन) में भी इसी तरह भाव पुष्पों (पीत तंदुल, स्वर्ण रजत कागज आदि के कृत्रिम पुष्प) का वर्णन किया है।

प्रतिष्ठासारोद्धार (आशाधर) पृ० ९९-कुंकुमाक्त पुष्पाक्षत्तं।



"व्रत तिथि निर्णय" में भी ऐसा ही उल्लेख है। देखो, पृष्ठ २०४

भगवान् के विहार काल में उनके चरणों के नीचे देवगण जो कमल रचते हैं वे स्वर्ण के होते हैं वनस्पति कायिक नहीं। देखो—

**भक्तामर स्तोत्र**—उन्निद्र हेमनवपंकज पुंज कांति ॥३६॥
**चैत्यभक्ति**—जयति भगवान्हेमां भोज प्रचार विजृंभिता ॥
**यशस्तिलक चंपू**—हेमाम्बुजान्यथ जिनस्यपदेऽपयामि ॥५०५॥

चैत्यभक्ति के प्राचीन अंचलिका पाठ में भी "दिव्वेण गंधेण दिव्वेणपुप्फेण" में दिव्य शब्द इसी प्रासुक अर्थ का द्योतक है।

देवगण जो कल्पवृक्षों के पुष्पों से जिनपूजा करते हैं वे कल्प-वृक्ष भी वनस्पति कायिक नहीं हैं वे पृथ्वी के सार हैं—मृण्मयी हैं देखो—तिलोय पण्णत्ती गाथा ३५४ अधिकार ४।

लवंग को भी 'देवपुष्प' कहते हैं। वे प्रासुक हैं अतः पुष्प की जगह लिए जा सकते हैं।

इसी पूर्व परम्परानुसार तेरापंथ में असली पुष्पों की जगह नकली पुष्पोंको समीचीन माना है क्योंकि वे हिंसाजन्यता से दूर हैं।

सवाल असली नकली का नहीं है प्रासुकता-अहिंसकता का है। अगर असली में भी हिंसा है तो वह त्याज्य है और नकली भी हिंसा से रहित है तो वह ग्राह्य है। यही जिनधर्म का सार है और यही विवेक की कसौटी है।

जब हमारी आराध्य मूर्त्ति ही संकल्पित-नकली है तो पूजा द्रव्यों के नकली होने में आपत्ति करना व्यर्थ है।

इसके सिवा जबकि असली चढ़ाने में कोई लाभ नहीं उल्टा नुकसान है। और नकली चढ़ाने में कोई नुकसान नहीं उल्टा लाभ है और साथ ही वह आगम सम्मत एवं निर्दोष निर्विवाद है तो उसी का आश्रय लेना समुपयुक्त है।

श्री पार्श्वनाथ दि० जैन तेरा मन्दिर
[illegible] म० प्र०

Scanned by CamScanner

एक पूजक को पूजा में मंगल-स्वस्तिपाठ, स्थापना, पूजन, पुष्पांजलि, शांतिपाठ, विसर्जन आदि में प्रतिदिन हजारों पुष्पों की जरूरत होती है। और पर्वपूजा तथा मंडल विधान, प्रतिष्ठादि में तो इससे भी कई गुणी पुष्पों की जरूरत होती है। इतने पुष्प किसी तरह संभव नहीं। इस दृष्टि से भी कुंकुमाक्त चांवल ही पुष्प रूप में उपयुक्त कार्यकारी ठहरते हैं।

मूर्त्तिमान (असली) से उनकी मूर्त्ति (नकली) ज्यादा उमर वाली और ज्यादा उपकारी होती है। उदाहरण के लिए महावीर भगवान् को लीजिये उनको उमर ७२ वर्ष की ही थी किन्तु आज २।। हजार वर्ष से उनकी मूर्त्ति प्रचलित है और उससे भव्य निरन्तर अपना आत्म कल्याण कर रहे हैं और आगे भी चिर काल तक करते रहेंगे।

महावीर के श्रीमुख से निकली दिव्य-ध्वनि (असली) से कुछ ही वर्ष तक भव्यों ने लाभ उठाया किन्तु वही शास्त्र रूप से निबद्ध होकर (नकल) हजारों वर्षों से भव्यों का कल्याण कर रही है और आगे भी बराबर करती रहेगी।

अतः असली (असल) से भी नकली (नकल) अनेक जगह ज्यादा गुणकारी हो जाती है। नकल में अकल की भी जरूरत नहीं रहती। सस्ता सौदा है। फिर भी उसकी आलोचना की जाती है। और साथ ही उसे अपनाते भी जाते हैं इस विचित्रता को क्या कहा जाय ?

**५. प्रश्न**--संगतता की दृष्टि से चन्दन को जिन चरणों पर चर्चना और पुष्पों को जिन चरणों पर चढ़ाना चाहिये या नहीं ?

**उत्तर**—संगतता की दृष्टि से तो फिर चन्दन केशर को सर्वांग में ही क्यों न लगाया जाय तथा पुष्पमाला को भी मूर्त्ति के



गले में ही क्यों न पहिनाया जाय। फिर तो जल नैवेद्य और फल को भी मुंह में ही क्यों न दिया जाय ? जब इन तीनों को प्रतिमा के आगे चढ़ाया जाता है तो चन्दन पुष्पों को भी प्रतिमा के आगे चढ़ाया जाना चाहिये क्योंकि प्रतिमा वीतराग निर्ग्रंथ अरहंतदेव की है। चन्दन पुष्प को (चाहे रंगे चांवल ही हों) उनके अंग पर चढ़ाना उन्हें सराग सग्रंथ सदोषी बनाना है। इस तरह देवा वर्ण-वाद करके खुद भी दोषी बनना है और प्रतिमा को भी अपूज्य करना है। इस प्रकार के कृत्य को संगत बताना यह और भी ज्यादा हिमाकत है। इसी से कहा है कि—

वीतराग देवजू के बिंब पै लगावे कोऊ,
कुंकुमादि लेप अरु केवड़ा विकार है।
तातें जिनबिंब पाँय दोष न लगावे कोऊं,
दोष जो लगावे ताके कुबुद्धि अपार है।।
काल दोष पाय जिन बिंबकूं पहनाय माल,
केवड़ा बगल धरि लेपे गंध सेती जूं।
ऐसी विधि परपंच रचि के सराग चित्त,
ताकूं पूजि मूढ कहे हम समकती जू।।

**लेप पुष्प अरु केवड़ा कामीजन के होय।**
**प्रतिमा के दूषण लगे, पूजनीक नहीं होय।।**
**जिन प्रतिमा है वीतरागमय, अन्तर बाहर शुद्ध।**
**पुष्प लेप अरु केवड़ा, ये प्रत्यक्ष विरुद्ध।।**

कोई भी द्रव्य जिन चरणों पर चढ़ाना निषिद्ध है, प्रतिमा के आगे ही चढ़ाना चाहिये। वनस्पति कायिक पुष्पादि तो चरणों पर ही क्या प्रतिमा के आगे भी नहीं चढ़ाने चाहिए।

Scanned by CamScanner

जैसे लड्डू में विष मिलाने वाला हिंसक-दोषी है उसी तरह मिष्ठान्नके लोभ से उसे खाने वाला भी दोष मृत्यु का भागी होता है। जिस तरह शास्त्र में मिथ्या बात मिलाने वाला कपटी है उसी तरह उसे जिनवाणी मानकर चलने वाला भी कुमार्गी है। इसी प्रकार वीतराग निर्ग्रंथ विम्ब को चन्दन चर्चना या उस पर पुष्पादि चढ़ाना भी उसे बिगाड़ना है ऐसा करने वाला और तदनुसार उसे मानने वाला दोनों दोषी-अज्ञानी हैं।

जो केशर चर्चित विम्ब के पूजन में दोष नहीं मानते हैं उनके केसरादि-वर्जित निरावरण के पूजने में दोष आयेगा। ऐसा तो हो नहीं सकता कि—चन्दन चर्चित और अर्चचित दोनों ही वंदनीय हो जावे क्योंकि कभी गोबर और गुड़ (विष और अमृत) एक नहीं हो सकते—दोनों की जाति ही जुदा है।

इसीलिये शास्त्रों में जिनदेव को निर्लेप ही बताया है देखो—

"ज्ञानार्णव"—शुद्ध मत्यन्त **निर्लेपं** ज्ञानराज प्रतिष्ठितं ।।

" —**निर्लेपो** निष्कलः शुद्धो ।। नित्यमपि निरुपलेपः ।।२२३ पु.सि.

महापुराण—**निर्लेपो** निर्मलोऽचलः ।।

जैन मूर्ति नग्न ध्यानस्थ योगी की है उसे केशर चर्चना पुष्प लगाना उसके लिये भूषण नहीं दूषण है क्योंकि यह पदविरुद्ध है। पदविरुद्ध क्रिया करना अवर्णवाद है। मूर्त्ति के लिये उपसर्ग और अंतराय है धर्म-विरुद्ध है। फिर भी इसे पुण्योत्पादक मानना अज्ञता है। अगर मूर्त्ति साधारण मनुष्य (सरागी) की हो तो उसके साथ ऐसी क्रिया (खिलवाड़) संगत कहला सकती है, जिन-मूर्त्ति के साथ नहीं।

जैसे बहुतसी प्राचीन मूर्त्तियों में छत्रत्रयादि अष्ट प्रातिहार्य उत्कीर्ण रहते हैं, अगर ऐसी क्रिया शास्त्र विहित होती तो फिर



मूर्त्ति में ही यानि गले में फूलमाला, चरणों पर पुष्प और टिपकी मूर्त्तिकार जरूर उत्कीर्ण कर देते किन्तु ऐसा है नहीं क्योंकि वीतराग दिगम्बर मत में ऐसी मान्यता नहीं है। भूगर्भ सेअनेक प्राचीन मूर्त्तियाँ निकलती रहती हैं किसी के ऊपर केशर पुष्पादि का उपयोग भी नहीं मिलता क्योंकि ऐसी आम्नाय ही नहीं है। यह तो आधुनिक लीला है।

मूर्त्ति के चरणों पर चन्दन केशर की टिपकी लगाने वाले कहते हैं कि—इससे प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित मूर्त्ति की पहचान हो जाती है। अथवा मूर्त्ति का अभिषेक हुआ है या नहीं पूजकों को यह भी ज्ञात हो जाता है (टिपकी लगाने का कोई उद्देश्य या लाभ आज तक ढूंढ कर नहीं बता सके तो अब ये नई कल्पनायें ईजाद की गई है किन्तु विचार करने पर यह सब दावा भी मिथ्या ही सिद्ध होता है। क्योंकि फिर तो मूर्त्ति की प्रतिष्ठा कराने की ही जरूरत नहीं रहेगी। टिपकी लगाने से ही जब मूर्त्ति प्रतिष्ठित मान ली जाती है तो फिर लोग प्रतिष्ठा का झंझट-व्ययभार क्यों उठायेंगे? अप्रतिष्ठित, शास्त्रविरुद्ध, अंगहीन, अयुक्त मूर्त्ति के भी लोग टिपकी लगाकर सहज ही योग्य बनालेंगे। इस प्रकार तो सारी व्यवस्था का ही लोप हो जायेगा। दूसरी बात रही अभिषेक की सो फिर लोग अभिषेक भी क्यों करेंगे? सीधी टिपकी लगा देंगे। टिपकी लगाने की भी क्या जरूरत? गत दिवस की लगी हुई ही रहने देंगे

इस तरह प्रतिष्ठा और अभिषेक क्रियाओं का ही लोप हो जायेगा। गलत चीज को जिस किसी तरह सिद्ध करने का यही परिणाम होता है।

जिन चरणयोः गंधं चर्चयामि। जिन पादयोः पुष्पं समर्पयामि ।।

(जिनेन्द्र के चरणों पर गंधलेपन और पुष्पसमर्पण करता हूं।)

श्री पार्श्वनाथ दि० जैन खण्डेलवाल मन्दिर

Scanned by CamScanner

शास्त्रों में ऐसे कथन पाये जाते हैं। इन सप्तमी विभक्ति परक कथनों का अर्थ वीतराग आम्नायानुसार ही करना चाहिये तभी श्रेयस्कर है।

जैसे—"गंगायां घोषः" का अर्थ कोई यह करे कि—गंगा नदी में (गंगा नदी के अंदर) झोपड़ियां होती हैं तो समुचित नहीं है। यहाँ सप्तमी विभक्ति का सामीप्य परक अर्थ करना चाहिये। यानि—"गंगा नदी के समीप (किनारे) झोपड़ियाँ होती हैं" यह अर्थ करना ही संगत होगा। इसी तरह "वटे गावः सुशेरते" इस सप्तमी विभक्ति परक वाक्य का भी कोई यह अर्थ करे कि—"वड़ के वृक्ष पर गायें सोती हैं" तो असंगत होगा। "वड़ के नीचे (छाया में) गायें सोती हैं" यह अर्थ करना ही सुसंगत होगा।

ठीक इसी प्रकार "जिन चरणयोः" का अर्थ जिन चरणों के ऊपर नहीं किन्तु जिन चरणों के समीप, नीचे, अग्रभूमि में गंधपुष्प चढ़ाना चाहिये। ऐसा अर्थ करना ही समीचीन होगा। यही शास्त्र विहित दि० आम्नाय सम्मत सम्यक् सुसंबद्ध पद्धति है।

चरणों के पास का भाग भी चरण ही कहलाता है। जैसे—सिद्धान्त में तीर्थङ्कर प्रकृति का बंध केवली श्रुत केवली के पादमूल में बताया है। यहाँ "पाद-मूल" शब्द का अर्थ वहां का समीप क्षेत्र है।

"हाथ में कंकण" का अर्थ कुहनी और भुजावाला सारा हाथ नहीं है किन्तु पूंचा मात्र है। इसी तरह "कृष्ण मुख" का अथ जीभ दांत वाला अंदर का मुख नहीं है किन्तु गाल, आँख, नाक वाला बाहरी भाग है।

अभयनंदि के लघुस्नपन श्लोक १२ में लिखा है कि—देवों ने मेरु के मस्तक पर भगवान् का अभिषेक किया। इसकी संस्कृत टीका



में लिखा है कि—"वटे गावश्चरन्ती वत् सप्तमी समीपे" अर्थात् वड़ के ऊपर नहीं वड़ के समीप गायें चरती हैं। इसी प्रकार यहां "मस्तक पर, का अर्थ मस्तक के समीप करना चाहिये।" (क्योंकि-सुमेरु की चोटी और स्वर्ग के एक बालाग्र मात्र का अंतर है अतः वहां कोई विराजमान नहीं हो सकता।)

आराधना कथा कोष में—ग्वाले के द्वारा प्रतिमा के चरणों पर कमल चढ़ाने की बात लिखी है सो यहां भी चरणों की अग्रभूमि अर्थ लेना ही लाजमी होगा क्योंकि—ग्वाला शूद्र होने से प्रतिमा का स्पर्श नहीं कर सकता। 'उपरि' का अर्थ भी ठीक ऊपर नहीं होता। जैसे—"वह कुये पर सो रहा है" इसका मतलब है कुये की जगत पर-पास की भूमि पर सो रहा है। अगर यहां खास ऊपर अर्थ करेंगे तो फिर मनुष्य ही कुये में गिर जायेगा।

आदि पुराण पर्व ४२ श्लोक २६ में जिन चरणों से स्पर्शित माला (शेषा) को मस्तक पर धारण करना बताया है। यहां भी चरणों के पास की भूमि-चरण चौकी से स्पर्शित अर्थ लेना चाहिए। अगर ऐसा अर्थ न लिया जावे तो उसी पर्व के श्लोक २७ में मुनियों की शेषा को भी ग्राह्य लिखा है। तो क्या मुनियों के अंग पर भी गंधलेपन पुष्प समर्पण होता है? ऐसा मानने पर तो मूलाचारादि से विरोध आयेगा क्योंकि मूलाचार अधिकार ६ गाथा ७१ की वसुनंदि टीका में लिखा है कि—पाद-धोयणं-कुंकुमादि रागेण पादयोर्निमली करणं त्याज्यं। अर्थात् चंदन केशर चरणों के लगाने का त्याग साधु को करना चाहिये। इसी तरह आगे गाथा ७२ में स्पष्टतया मूल में 'लेपन' (चन्दन कस्तूरिकादिना शरीरस्य चर्चनं) का निषेध किया है। मलाचार अ० १ गाथा ३०-३१ की टीका तथा योगिभक्ति गाथा १४ की टीका भी देखिये-जिनमें स्पष्टतया विलेपनादि का निषेध किया है। लेपनादि नग्न दिगम्बरत्व के भी विरुद्ध है।

Scanned by CamScanner

गुणभद्र कृत—बृहत्स्नपन श्लोक ४० में-"क्षिपामि जिन पादयो रूपधरित्रि पुष्पांजलिम्" लिखा है इससे स्पष्ट सिद्ध है कि-पुष्पांजलि जिन चरणों के पास की भूमि में ही चढ़ाई जाती है जिन चरणों से स्पर्शित नहीं की जा सकती है। इसी तरह सोमसेन कृत त्रिवर्णाचार पृष्ठ १०२ में लिखा है कि—"जिनश्री पाद पीठस्थां शेषां शिरसि धारयेत्।" अर्थात् चरण चौकी पर स्थित शेषा-पुष्प-मालादि को शिर पर धारण करना चाहिये।

गुणभद्राचार्य कृत उत्तर पुराण पर्व ७४ श्लोक ३२१-गंधादिभि विभूष्यैतत्पादोपात्त महीतलं ।। इसमें स्पष्ट मुनि पुंगव महावीर के चरणों की पास की भूमि पर गंध पुष्पादि के चढ़ाने का उल्लेख किया है।

यशस्तिलक चम्पू में बताया है—"पुष्पं त्वदीय चरणार्चन पीठसंगात्" ।।५०७।। अर्थात्-भगवान् की चरण चौकी पर पुष्प चढ़ाये जाते हैं भगवान् के चरणों पर नहीं। पुष्पों का संसर्ग चरण चौकी से ही है चरणों से नहीं। यहां मूल के "अर्चन-पीठ" (पूजा चौकी) शब्द से इस बात का भी खुलासा होता है कि पूजाद्रव्य चरणों के आगे चौकी पर चढ़ाये जाते हैं और उस चौकी को "अर्चन-पीठ" कहते हैं।

रावजी सखारामजी द्वारा प्रकाशित गजांकुश कृत अभिषेक पाठ के साथ गुरुपूजा छपी है इसमें पुष्पों को मुनि चरणों की पास की भूमि में चढ़ाना लिखा है। निम्नांकित ग्रंथों में भी प्रतिमा के आगे ही चढ़ाना लिखा है—बसवा गुटका (वि० स० १५६३) पत्र ४६ आदि-जिनाग्रे परिपुष्पांजलिंक्षिपेत्।

नित्य पूजापाठ—विधियज्ञ प्रतिज्ञानाय जिन प्रतिमाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपेत्।



नित्यमहोद्योत (पृष्ठ २५६) अर्हत्पुरः पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

" " पृ० २५१ (टीका) त्रैलोक्यनाथ चरणयोर्विषयेऽग्रे वारच्यतेऽयं पुष्पांजलिः।

अभिषेक पाठ (अभयनंदि) पूजां पुरो विरचयामि जिनाधिपानां ।।३६।।

"अभिषेक पाठ संग्रह" पृष्ठ १६६—जिनाग्रे पुष्पांजलिः।

आदि पुराण पर्व २५ श्लोक ५६ में बताया है कि—सिंहासन भगवान् के स्पर्श से सुशोभित था—सिंहैरूढं विभातीदं तव विष्टर मुच्चकैः। रत्नांशुभिर्भवत् स्पर्शान्मुक्त हर्षांकुरैरिव ।। इसी प्रकार पर्व २३ श्लोक ६ में लिखा है कि—ऋषभदेव जिस तीन कटनीदार सिंहासन पर विराजमान थे वह उनके चरण स्पर्श से पवित्र था। यहाँ स्पर्श शब्द का अर्थ छूना नहीं है किन्तु सन्निकट है क्योंकि भगवान् सिंहासन से चार अंगुल ऊपर अधर विराजमान रहते हैं उससे स्पृष्ट नहीं होते। जैसा कि आदि पुराण पर्व २३ श्लोक २६ में तथा-त्रिलोक प्रज्ञप्ति गाथा ८६५ अधिकार ४ में लिखा है।

अतः जिन चरणों से स्पृष्ट शेषा का अर्थ चरण चौकी से स्पृष्ट लेना चाहिए। स्पर्श शब्द से भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। यही विवेक और समीचीनता का तकाजा है।

लौकिक में भी रजस्वला का रसोई घर में खाद्य वस्तुओं का पर्शस नहीं करते भी प्रवेश कर लेना मात्र ही स्पर्श दोष मान लिया जाता है। यही बात ब्राह्मण के चौके की है और यही बात शोध के चौके की है।

इसलिये स्पर्श का अर्थ सभी जगह छूना करना ठीक नहीं है जहाँ जैसा युक्त और उत्तम हो वैसा ही करना चाहिये। शब्दों के पीछे लट्ठ लेकर पड़ना कोई बुद्धिमानी नहीं है। शास्त्रों में अनेक

Scanned by CamScanner

तरह के कथन हैं जिनमें दृष्टिकोण के समझने की बड़ी जरूरत है। ठीक आशय के ग्रहण न करने से अनेक विसंवाद उठ खड़े होते हैं।

किसी सास ने बहू को कहा—ऊपर से कचरा डालो तो आदमी देख कर डालना। बहू ने जब नीचे से आदमी गुजरा तो उस पर कचरा डाल दिया। इससे जब झगड़ा हुआ तो सास ने बहू को कहा-मेरा आशय तो यह था कि—आदमी देखकर यानि आदमी बचाकर कचरा डालना तुमने आशय तो पकड़ा नहीं और गलत तरीके से शब्दों को पकड़ लिया। इसी से यह अनर्थ हुआ।

पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में लिखा है—

**अत्यन्त निशितधारं दुरासदं जिनवरस्य नय चक्रं।**
**खण्डयति धार्यमाणं, मूर्धानं झटिति दुर्विदग्धानां॥**

अर्थात्—जिनेन्द्र का नयचक्र अत्यन्त तेज धार वाला और दुःसाध्य है अगर उसे सावधानी से ग्रहण नहीं किया जाय तो वह ग्रहणकर्त्ता का ही शिर तत्काल उड़ा देता है।

निर्वाण क्षेत्र नंदीश्वर द्वीप रत्नत्रयादि की पूजा में भी गंध-पुष्पादि चढ़ाये जाते हैं तब उनका विलेपनादि किनके होगा ? अतः प्रतिमा के आगे चौकी पर ही अष्ट द्रव्यों को चढ़ाना सुसंगत है।

राजवार्तिक अ० ६ सू० २२—"चैत्यप्रदेश गंध माल्य धूपादि मोषणं"—इसमें प्रतिमा के गंधादि का चोरना अशुभाश्रव का कारण बताया है। अगर गंध के लेपन की प्रवृत्ति मानी जाय तो इसका चुराना संभव नहीं अतः गंधादि का चढ़ाना ही इससे सिद्ध होता है।

राजवार्तिक अ० ७ सूत्र २९ में चन्दन को परिग्रह में बताया है तब उसे मूर्ति के लगाकर निर्ग्रन्थ दि० मूर्त्ति को सग्रंथ बनाना है।



आहार के भेदों में लेप्याहार भी शास्त्रों में बताया है। जब अरहंत भगवान् के आहार ही नहीं होता तो फिर उनके शरीर पर लेप लगाना दिगम्बर आम्नाय सम्मत नहीं है, यह तो श्वे० आम्नाय है। भगवान् के किसी भी वस्तु का स्पर्श नहीं होता अतः कोई भी पूजाद्रव्य उनके अंग पर नहीं चढ़ाना चाहिये सामने चढ़ाना चाहिए।

चर्चन का अर्थ पूजन लेना चाहिए विलेपन नहीं क्योंकि कोशों में चर्चन का अर्थ पूजन भी दिया है। विलेपन लें तो अंग पर लेपन नहीं करना चाहिए अग्रभूमि पर लेपन करना चाहिए।

शंका—फिर मूर्त्ति पर जलाभिषेक क्यों किया जाता है ?

**सामाधान**—शुद्ध जल से नित्य प्रक्षाल करने में वीतरागता न बिगड़ कर उल्टी उज्ज्वलता आती है मूर्त्ति की स्वच्छता के लिए यह जरूरी है। दर्शक को इससे सम्यक्, दर्शन होता है। जबकि गंधलेपनादि से वीतराग मुद्रा में बिगाड़ आता है सरागता-सग्रंथता द्योतित होती है। इसमें दोष ही दोष है कोई लाभ नहीं। अभिषेक में जल प्रतिमा पर गिराया जाता है लगाया या ठहराया नहीं जाता वह लगता और ठहरता भी नहीं। जो आर्द्रता होती है वह हवा आदि के संयोग से शीघ्र विलीन हो जाती है। जबकि गंधलेपनादि प्रतिमा के लगाये जाते हैं वे स्थायित्व को प्राप्त होते हैं और प्रतिमा के वीतराग स्वरूप को विकृत करते हैं। ये अचल हैं जबकि अभिषेक का जल चल है अतः दोनों की समता करना अज्ञता है। दोनों में आकाश पाताल का अंतर है। अभिषेक शास्त्र विहित है गंधलेपनादि शास्त्र विरुद्ध हैं। जलाभिषेक प्राकृतिक है निर्जन वनों गिरिकंदराओं की प्रतिमाओं का वर्षाजल से सदा अभिषेक होता रहता है।

तिलोयपण्णत्ती आदि में बताया है कि—गंगाकुण्ड के नीचे ऋषभ प्रतिमा है कुण्ड के बहते जल से सदा प्रतिमा का अभिषेक

Scanned by CamScanner

होता रहता है। इससे एक बात और फलित होती है कि—फिर उस प्रतिमाके गंधलेपन,चरणों पर पुष्प चढ़ाना ये बन ही नहीं सकते हैं।

"सिद्धान्तसार प्रदीप" अध्याय ६—

**यज्जैन चन्द्र बिम्बस्य चर्चितं कुंकुमादिभिः ।**
**पाद पद्मद्वयं भव्यै स्तद् वंदयं नैव धार्मिकैः ॥१२४॥**

"स्वबोध रत्नाकार"—

**पाद द्वयं जिनेन्द्रस्य चन्दनैस्तु सुचर्चितं ।**
**धार्मिकास्ते न पश्यंति, महापाप निबंधकम् ॥**

"सार चतुर्विंशति" (कुल भूषण स्वामी कृत)

**अनर्चित पद द्वंद्वं कुंकुमादि विलेपनैः ।**
**जिनेन्द्र बिम्बं पश्यंति, ते नराः धार्मिकाः भुवि ॥९॥**

इन ग्रंथों में बताया है कि—जिस जिनबिम्ब के चरण कुंकुमादि से विलिप्त हों भव्य उनके दर्शन-वंदन नहीं करते। कुंकुमादि से अलिप्त के दर्शन करने वाले ही धार्मिक हैं।

भाव दीपिका (पं० दीपचन्दजी शाह कृत पृष्ठ ५३) ज्ञानानंद श्रावकाचार पृ० ९६ और १८८ तथा चर्चासार संग्रह में भी चरणों पर चन्दन चर्चने और पुष्प चढ़ाने का प्रबल विरोध किया है।

**प्रश्नोत्तर ये सार, भविक हिरदय धरें।**
**वीतराग जिनबिम्ब, निरखि वंदन करें॥**

Scanned by CamScanner